Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

VOL- VIII	ISSUE- III	MARCH	2021	PEER REVIEW e-JOURNAL	IMPACT FACTOR 7.149	ISSN 2349-638x

हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र : रांगेय राघव

डॉ. रचना बिमल
एसोसिएट प्रोफेसर,
सत्यवती महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रतिभा उम्र की मोहताज नहीं होती जैसे सुंदर फूल देर तक खिले नहीं रह सकते '............ बचपन में जब यह पंक्ति पढ़ी तो समझ नहीं आई किन्तु जीवन के अनुभव ने सिखाया प्रतिभा उर्जा का पर्याय होती है और उर्जा को जितने वेग से खर्च किया जाता है उसका आगार उतनी ही जल्दी रीत जाता है। क्या यह प्रकृति का कोई नियम है? क्या इस नियम को सामान्य कसौटी पर कसा जा सकता है? शायद नहीं! क्योंकि प्रतिभा रूपी ऊर्जा का विस्फोट कब और कैसे होगा? यह कोई नहीं जान सकता और जिसे जाना ना सके उस पर सामान्य दृष्टि के नियम लागू नहीं होते। पर सत्य यही है कि असाधारण प्रतिभा का जीवन विस्फोटक नहीं महा–विस्फोटक होता है जो अपने छोटे से जीवन काल में ही इतनी चमक पैदा कर देता है कि सदियाँ बीत जाने पर भी उस जीवन की चमक सितारा बनकर, दुनिया को रोशन करती है। ऐसे ही सितारे का नाम है– त्र्यंबक नरसिंह वीर राघव ताताचार्य जिन्हें हिन्दी साहित्य आकाश में 'रांगेय राघव' के नाम से जाना जाता है पर आजकल तो आकाश में प्रदूषण की धूल छाई हुई है। हैलोजन की लाइटों (कृत्रिम प्रकाश) ने आकाशगंगाओं की चमक तक को लील कर लिया है। ठीक यही स्थिति संवेदनाओं के चित्रण क्षेत्र 'साहित्याकाश' की भी हुई है जहाँ मानवीय गरिमा और मूल्यों को, यथार्थवादी कृत्रिम शब्दांकन ने रिपलेस कर आभासी दुनिया के मायाजाल के प्रदूषण से ग्रसित करा दिया है। नतीजा आज के हिन्दी पाठक उन उदात्त, मूल्यधर्मी साहित्य सृजकों को जान ही नहीं पाते जिन्होंने अपने शब्दों में मूल्यों का अमृत भर उन्हें अर्थवत्ता प्रदान करते हुए साहित्य की सर्जना में सर्वस्व अर्पित किया था। हिन्दी साहित्य जगत के मील के पत्थर स्व. रांगेय राघव ऐसी ही महान् विभूति थे, जिनका सृजनात्मक जीवन आज भी प्रेरणास्पद है। यह महान् साहित्यकार धीरे–धीरे पाठकों की पहुँच से दूर हो रहा है क्योंकि पाठ्यक्रमों से लेकर प्रकाशन जगत तक ने आज (गिने–चुने लेखकों को छोड़कर) गम्भीर साहित्य सृजन करने वाले रचनाकारों को अतीत की वीथियों में कैद कर दिया है। हिन्दी पाठक वर्ग तो वैसे भी बड़ी से बड़ी कृति के ग्वाक्ष नहीं खोलता तो क्यूं ना २०वीं सदी के रांगेय राघव जी के कृतित्व और व्यक्तित्व से २१वीं सदी में भी परिचित हो कर उनकी मेधा शक्ति से जुड़ा जाए!

प्रकृति को एक ओर निकट से जानने की जिज्ञासा रांगेय राघव में भरपूर थी इसीलिए वे पर्वतीय शीर्ष से आलिंगनबद्ध मेघ घटाओं को देखकर अभिभूत होते थे तो दूसरी ओर यमुना तट से लेकर महिम 'बम्बई' का समुद्र तक उनके स्मृति ग्रंथ के अविस्मरणीय पृष्ठ थे। रांगेय जी मानवीय प्रकृति को जानने के लिए सदैव उत्सुक रहा करते थे। उनके जीवन में उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक के असंख्य

स्त्री पुरुष आए रांगेय जी ने उन सबकी प्रवृत्तियों से कुछ ना कुछ सीखने का ही प्रयत्न किया।

रिक्शा वाले, तांगे वाले, घी वाले, लोहपीरे, करनट, गाँव वाले, मित्र मंडली, अफसर लोग अर्थात् जब चाहे किसी भी वर्ग के लोगों को लिया और उपन्यास की रचना कर डाली। इस संदर्भ में उनकी पत्नी सुलोचना राघव ने लिखा है— "१९६१ की एक शाम मैं गाँव के घर की छत पर खड़ी एक लोहपीटे दम्पत्ति को (राजस्थान में उन्हें गाड़िया लौहार कहते हैं) काम करते देख रही थी और सोच रही थी उनके अनोखे जीवन के बारे में।"

इतने में सुनाई दी उनकी पुकार : "चाय नहीं पिलाओगी? यहाँ क्या कर रही हो?" मैंने कहा : "सोच रही थी की ये लोग आपके ध्यान से कैसे बच गए?"

"अरे हाँ, तुम ठीक कह रही हो, जाओ फट से एक कप चाय तो बना लाओ फिर देखना।"

चाय की चुस्कियाँ लेते हुए उन्होंने मुझे एक 'प्लाट' सुनाया। सुनाकर पूछने लगे, "कहो कैसा लगा?"

मैंने पूछा : किसकी लिखी कहानी है? "तुम्हारे सामने जो खड़ा है, उसकी।" मुस्कराते हुए वे बोले और मुझे आश्चर्य में डाल दिया। एक नया आश्चर्य यह क्या? आँख झपकते ही प्लाट तैयार? और उससे भी अधिक विस्मय मुझे तब हुआ था, जब तीन दिनों में ही उन्होंने 'धरती मेरा घर' लिखकर उन लोहपीटों को, जो कभी एक स्थान पर बसकर नहीं रहते, सबके मन में बसा दिया।"[१]

वास्तव में रांगेय जी को लोगों से बतियाना बेहद पसंद था। लोगों की बातें और विचार उनके लेखन को यथार्थवादी बनाते थे। सम्भवत: इसीलिए वह प्रगतिशील लेखक संघ की १९३९ के आस—पास होने वाली नियमित साप्ताहिक बैठकों में भी भाग लेते थे। गोविन्द रजनीश ने लिखा है— "संघ का तब व्यापक आधार था। इन सभाओं में बाबू गुलाबराय, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. सत्येन्द्र विश्मर मानव, नेमिचंद्र जैन और भारतभूषण अग्रवाल बराबर भाग लेते थे। लगभग हर बैठक में रांगेय राघव कविता, कहानी या उपन्यास का अंश लिखकर लाते और सुनाते थे। प्रगतिशील लेखक संघ के सभी सदस्य उनकी प्रतिभा से चकित थे।[२]

रांगेय जी की प्रत्येक कृति (विशेषकर उपन्यास और रिपोर्ताज) युगीन बोध का प्रमाण है। चाहे वह उनका प्रथम उपन्यास 'घरौंदे' हो या अंतिम उपन्यास 'लौटती आवाज'। चित्रित युग का प्रत्येक क्षण पाठक के हृदय में स्पंदित होने लगता है। इतिहास के दरवाजे वर्तमान की वीथियों में तब्दील हो जाते हैं। यही कसौटी है किसी भी रचना के कालजयी होने की। ऐसे साहित्य को ही चिरंतन साहित्य कहा जाता है। शाश्वत साहित्य मानवीय मनोभावों का वाहक होता है। सामाजिकता ऐसे साहित्य में खोजनी नहीं पड़ति बल्कि उसकी प्रत्येक पंक्ति में रची बसी होती है। मानव जीवन के सामाजिक पक्ष के आंतरिक एवं बाह्य स्तरों का कालजयी रचना में खुलकर चित्रण होता है। 'तूफानों के बीच' कृति की तो प्रत्येक पंक्ति पर उपरोक्त तथ्य लागू होते हैं। 'सामाजिकता या मानवतावाद' इस रचना में ढूँढना नहीं पड़ता वरन् प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक शब्द, प्रत्येक पंक्ति उपरोक्त मूल्यों की व्याख्या करती है। यहीं पर आकर रांगेय जी का व्यक्तित्व भी अत्यन्त विराट हो जाता है। राघव यही से प्रगतिवाद, मार्क्सवाद, आदि की सीमाओं को भी तोड़ डालते हैं। इस संदर्भ में डॉ. पदमसिंह शर्मा कमलेश की राघव जी पर की गई टिप्पणी जान लेना काफी है। वह लिखते हैं कि— 'प्रगतिशील लेखक संघ ने उनकी जन्जात मेघा पर धार रख दी थी लेकिन वे संघ की केवल खानापूर्ति से संतुष्ट नहीं थे।[३]

सम्भवत: इसीलिए सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर भी रांगेय राघव ने जनसाधारण का लेखक बनने का व्रत लिया था। वे चाहते तो बहुत से फैशनेबुल लेखकों की तरह बौद्धिक प्रगतिशीलता को पकड़कर बैठ जाते पर जो साहित्य स्रष्टा अपने साहित्य के अनुकूल जीवन नहीं जीता उसके साहित्य में शक्ति नहीं आती। रांगेय राघव इसीलिए जीवन समर में गहरे उतरकर 'तूफानों के बीच' संघर्षों से जूझते हैं और फिर उन को कलमबद्ध भी करते हैं।

रांगेय राघव जेठ की तपती दोपहरी में गरीब—मजदूरों की बस्तियों में चक्कर लगाते थे जिससे कष्टों का अनुभव स्वयं कर सके। उनकी निश्चित मान्यता थी कि ऐसे प्रत्यक्ष सम्पर्क के बिना जनवादी लेखक नहीं बना जा सकता। यह वहीं प्रवृत्ति थी जिसके कारण वह बंगाल के अकाल के समय वहां की शस्यश्यामला धरती को उस अकाल यंत्रणा से तड़पता देखने गए और फिर 'तूफानों के बीच' शीर्षक से जो रिपोर्ताज उन्होंने लिखे, उनके द्वारा हिन्दी साहित्य में ही एक नयी विधा का विकास ही नहीं हुआ वरन् रांगेय राघव का भी जीवन परिवर्तित हो चला।

रांगेय राघव विचारों में मार्क्सवादी थे और १९४२ में कम्यूनिस्ट पार्टी के बहुत निकट थे लेकिन वे कट्टरपंथी नहीं थे। साहित्यकार की वादग्रस्तता के प्रति उनके मन में एक धृणा थी ओर इसी ने उन्हें पार्टी सदस्य बनने से रोका था। यह मनोवृत्ति ही इस बात की उत्तरदायी रही है कि उन्होंने न कोई अपना दल बनाया न किसी से कभी बंधे ही।

रांगेय राघव प्रगतिशीलता के हामी थे पर साथ ही भारतीय इतिहास, भारतीय परम्परा, भारतीय दर्शन, भारतीय साहित्य और भारतीय संस्कृति के भी सच्चे समर्थक थे। वे एक विराट फलक पर तूलिका चलाकर अतीत, वर्तमान और भविष्य को समग्र रूप से चित्रित करने वाले कलाकार थे। वैज्ञानिक और समाजवादी दृष्टि से ही पुरातन और नूतन की धारणा करते थे। न केवल साहित्य वरन् अपने जीवन में भी किसी सीमाबद्ध विचारधारा का उन्होंने सदा तिरस्कार ही किया।

'रांगेय राघव एक साथ कवि, कथाकार, नाटककार, निबन्धकार आलोचक, अनुवादक, इतिहासज्ञ, पुरातत्त्ववेत्ता, समाजशास्त्री और तत्त्वान्वेषी साहित्यस्रष्टा थे।[४] राहुल सांस्कृत्यायन की तरह तल भेदी दृष्टि उनके पास थी।

रांगेय जी ने साहित्य में मनुष्य को जीया और मनुष्य जीवन को साहित्यिक कसौटियों का आधार बनाया। मार्क्सवाद की रचनात्मक शक्ति को उन्होंने नही नकारा, मनुष्य की उन्नति, प्रगति में मार्क्सीय दर्शन जहाँ तक साधक हुआ उसका उन्होंने स्वागत किया लेकिन वे किसी भी 'वाद' विशेष से नहीं बंधे। उनका समर्पण मानवता के प्रति था। फलत: उनका दृष्टिकोण लचीला, स्पष्ट एवं आत्मबोधक था जिसके बल पर उन्हें हिन्दी साहित्य की प्रथम पंक्ति में बैठने का गौरव मिला।

रांगेय—कंठ में व्याप्त क्रांतिकारी स्वर संघर्ष की भयानक शक्ति से परिचित थे। सामाजिक विचारणा के व्यावहारिक रचनाकार रांगेय जी की कला ने मार्क्सवाद में अपनी आस्था को व्यक्त करने पर भी अपने स्वतंत्र चिंतन को बंदी बनाकर नहीं रखा। वे भारतीय परिस्थितियों से निर्मित परिवेश के अन्तर्गत ही कतिपय संशोधनों के साथ मार्क्सवाद में अपनी निष्ठा व्यक्त करते हैं— "मूलत: मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद आज भी है, किन्तु हमें नयी समस्याओं को देखना चाहिए और मार्क्स के सिद्धान्तों को संशोधित रूप में देखना चाहिए।"[५]

'वादों के प्रति अपना मत व्यक्त करते हुए इन्होंने लिखा है— "मैं किसी वाद में सीमित नहीं हो जाता, क्योंकि मैंने किसी की नकल नहीं की। मैंने उपन्यास का मूलाधार भी अन्य अभिव्यक्तियों के रूपों की भाँति भाव को माना

है, और भाव के विषय में मेरा मत स्पष्ट ही है, कि लोक कल्याण को समन्वित करके ही युग सत्य के बीच मनुष्य की चेतना का निखार भाव को लेकर चलता है।.... न में यौनवादी तृष्णा में व्यक्तिवाद और प्रयोगवाद का आश्रय लेना चाहता हूँ, न प्रगतिवाद के चोले में अपने को यांत्रिक बना सकता हूँ। मेरे सामने इतिहास है, जीवन है, मनुष्य की पीड़ा है और वह मनुष्य की चेतना जो निरंतर अंधकार से लड़ रही है और इससे बढ़कर अभी तक कोई सत्य मेरे सामने नहीं आया है। व्यर्थ की समस्यायें मुझे नहीं आती और वह भी व्यक्तिवादी टुंटपुंजियेपन की।"[६]

राघव जी का उपरोक्त कथन केवल आत्मानुशंसा नहीं वरन् अक्षरश: सत्य है। लोक के कल्याण के लिए राघव जी ने अपने साहित्य में हर उस मूल्य को स्थान दिया है, जिससे उसके (लोक) जीवन में सुख आता हो, उसका दर्द दूसरों में कर्त्तव्यबोध जगाने मे सक्षम बनता हो। इससे राघव जी के साहित्य में जहाँ हिन्दू– मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, नारी–शिक्षा, मन–निषेध आदि जैसे गांधीवादी सुधारवादी मूल्य मिलते हैं वहीं दूसरी और मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सामाजिक स्थिति के विवेचना सिद्धान्त (वर्गभेद) के भी दर्शन होते हैं। वर्गभेद, पूंजीवादी शक्तियाँ किस प्रकार समाज को चोट पहुँचाती है, कैसे चंद लोग षड्यंत्र के द्वारा शेष समाज को मानव होने की 'उपाधि' से वंचित कर देते हैं इसके दर्शन हमें 'तूफानों के बीच' में होते हैं। यही इस रिपोर्ताज का यथार्थ भी है। यथार्थ यानी जीवन का वास्तविक चित्रण जो समाज का पूरा चित्र उतार देता है। समाज में उसकी भूमिका से उन शक्तियों को ताकत देना जो समाज की विकृतियाँ दूर करने में लगी है। समाज की मूल विकृति है– सम्पत्ति के उत्पादन और वितरण की असमानता, शोषण जिससे वर्ग संघर्ष पनपता है।

मार्क्सवाद के संदर्भ में रांगेय जी की अपनी दृष्टि एवं मार्क्स के द्वंद्वात्मक वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में अपनी व्यवस्था है। वे लिखते हैं– 'मार्क्सवाद केवल वर्ग संघर्ष की व्यवस्था नहीं है, वह मानव–जीवन के समस्त अंगों का व्यापक अध्ययन है, जो सम्पूर्ण मनुष्य को छूने की साम्थर्य रखता है। प्रत्येक युग में जो भी विचारधारा रही है, उसने मनुष्य को, उसकी संस्कृति को समर्थ बनाया है और उसके चिंतन को उकसाया है।

राघव जी यहाँ भी मार्क्सवादी नहीं कहलाना चाहते। वे लिखते हैं– "मैं कभी मार्क्सवादी ही कहला सकूं, ऐसा नहीं रहा। .... मार्क्स से जो मुझे लेना था, वही मैंने सदैव लिया, जैसे अन्यों से बहुत– कुछ लेने योग्य लिया है। युगों से अपराजित मनुष्य की साधना, वह भावना ढूँढने का पता जो वर्तमान और अतीत में मनुष्य की चेतना को उद्‌बुद्ध करती है, उसके कष्टों को मिलने की प्रेरणा देती रही है, मेरा प्रयत्न रहा है और वर्गयुद्ध को मैने स्वीकार किया है, किन्तु मनुष्य को कभी यांत्रिक चिंतन का दास स्वीकार नहीं किया।"[७]

वैसे भी दीपक को जिस प्रकार अपनी रोशनी के लिए सूर्य का प्रकाश नहीं चाहिए उसी प्रकार राघव जी को भी किसी के आलम्बन की जरूरत नहीं थी। उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र चिंतन और प्रचंड मेधा शक्ति से निर्मित था उनका वैचारिक धरातल मार्क्सवादी अनुचेतना से भले ही अनुप्रमाणित रहा हो पर इसके लिए उन्होंने पार्टी लिटरेचर नहीं लिया। मार्क्सवादी अवधारणाओं को लेकर रांगेय राघव और डॉ. रामविलास शर्मा में काफी सैद्धान्तिक मतभेद था। बतौर राजेन्द्र यादव कॉलेज या विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर सकते थे। अनेक बार उनसे ऐसे आग्रह किए भी गए पर उन्होंने उन्हें स्वीकार नहीं किया किंतु आगे चलकर उन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और कभी–कभी प्रकाशकों की मांग

पर लिखना भी पड़ा जिससे उनके लेखन में अतिलेखन के दोष भी आ गए। नेमीचन्द्र जैन ने इसीलिए उनके दो उपन्यासों की समीक्षा करते हुए लिखा था— 'ज्ञान का प्रदर्शन, प्रतिभा का विस्फोट, किन्तु अनुभूति का प्रचण्डवेग'।

स्वर्गीय रांगेय राघव हिन्दी के ऐसे लेखकों में से थे जिनकी प्रतिभा में विस्फोट भी होता है और विस्तार भी पर अनुभूति अथवा विचार की गहनता, तीव्रता अथवा उसका समुचित संकेन्द्रन प्राय: नहीं होता। यूं वे अपने व्यक्तित्व में इतना कुछ समेट लेना, घेर लेना चाहते हैं कि कलात्मक सत्य और अभिव्यक्ति पर ध्याान देने का न तो उन्हें अवकाश रहता है और न उनकी प्रवृत्ति हीं इसी समीक्षा में आगे उन्होंने लिखा है— उनकी कल्पना शक्ति बड़ी व्यापक और प्रबल थी, सृजनशीलता अटूट और परिश्रम दायता तथा एकनिष्ठता अपूर्व थी पर उनकी अधिकांश रचनाओं में संयम और चयन की सृष्टा के मौलिक कलाबोध की स्थिर संवेदना की बड़ी भारी कमी है। इसीकारण उनकी कृतियाँ उनकी कुशलताओं, विशेषताओं और सम्भावनाओं के बावजूद उपलब्धि के किसी सुनिश्चित शिखर तक पहुँचने से पहले ही बिखर जाती है और इसी कारण उनमें प्राय: बेशुमार जानकारी की विविध विषयों के ज्ञान और पाण्डित्य की तो भरमार है पर आत्मा को झकझोरने वाली तीव्र अनुभूति का प्रचण्ड वेग बहुत ही कम, उनमें बुद्धि का विलास अधिक है, मन का विक्षोभ कम इसलिए इतना अधिक लिखने पर भी (या कि इसी कारण ही?) रांगेय राघव हिन्दी कविता या उपन्यास के क्षेत्र में वह स्थान कभी न प्राप्त कर पाए जो उनके समकालीनों या परवर्त्तियों को केवल एक दो रचनाओं के बल पर ही सहज प्राप्त हो सकता है।"[८]

मित्रों और आलोचकों की दृष्टि से रांगेय राघव का विपुल लेखन भले ही ईर्ष्या एवं द्वेष का कारण रहा हो अथवा सतही लेखन का पर्याय किन्तु राघव जी को अपने लेखन कार्य में कोई शिकायत नहीं थी। उनके मित्र गिरीश अस्थाना ने एक बार सलाह दी थी : यार पप्पू, तुम इतना अधिक लिखते हो, इसलिए ऐसा लिखते हो। थोड़ा लिखो और जमकर लिखो! 'जहाँ तक उसकी क्वालिटी का सम्बन्ध है वह तो समय बताएगा, उस पर राय देने वाले तुम कौन होते हो।' उद्धृत आत्मविश्वास भरा जवाब मिला— "आप लोगों में जाने कैसे यह एक मिथ्या धारणा पनप गई है कि कम लिखना और श्रेष्ठ लिखना एक ही बात है। कभी रवीन्द्रनाथ की किताबें गिनी है। टोलस्टॉय, गोर्की, रोलां, ह्यूगो, ओला, डिकैंस, स्काट का कभी पता लगाना कि एक—एक ने कितना लिखा है! दास्तोव्स्की के पन्ने गिनोगे? इनमें से किसी एक के साहित्य का बोझ अकेला आदमी नहीं उठा सकता।"[९]

रांगेय जी ने उपरोक्त कथन हवा में तीर चलाने के लिए नहीं कहा। हिन्दी में हीं नहीं वरन् भारतीय साहित्य में सम्भवत: इतनी विपुल मात्रा में लिखने वाले लोग गिने चुने ही हैं। हिन्दी में तो केवल राहुल सांकृत्यायन ही उनके समकक्ष ठहरते हैं। यह बात अलग है कि उपरोक्त सभी लेखकों ने इतना साहित्य रचने में चालीस—पचास साल का समय लिया जबकि रांगेय जी ने तो जीवन ही ४० वर्षों तक जिया।

अमृतराय जी की बात इस संदर्भ में ज्यादा सटीक लगती है। उन्होंने भी रांगेय जी को विपुल लेखन से बचने का आगह किया था। रांगेय जी ने उन्हें जो उत्तर दिया वह उनके दृष्टिकोण को ज्यादा स्पष्ट करता है। हालाद्दकि यह बात अनास्थावादियों के गले से भले ही नीचे न उतरे। खैर उन्होंने कहा— "तू नहीं जानता मेरी उम्र बहुत कम है, उसी में सब कर लेना है।"[१०] इस कथन से लगता है कि रांगेय जी को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। मगर अपने बेतहाशा काम से तो उन्होंने पहले ही मौत को जीत लिया था और जितना काम

दूसरा आदमी अस्सी—नब्बे बरस की आयु पाकर भी पूरा नहीं कर पाता उतना उन्होंने चालीस वर्ष की अल्प आयु में ही कर डाला। इसलिए जब मौत आई तो वह पूरी तरह उसके लिए तैयार थे। उन्होंने जीवन को व्यर्थ नहीं गँवाया बल्कि उसे नवीन परिभाषा दी। अकाल मृत्यु को मरकर भी पराजित कर दिया।

इस प्रकार प्रेमचन्द जैसा यथार्थवाद, प्रसाद जैसा ऐतिहासिक दृष्टिकोण, राहुल जी जैसा विद्वान लेखक— "त्र्यंबक नरसिंह वीर राघवाचार्य: १७ जनवरी १९२३ को जन्में और १२ सितम्बर, १९६२ को चले गये और १३ की सांझ को तो, याद नहीं, किसी ने कहा था— 'इन्द्रधनुष डूब गया।' तभी अखबारों में लोगो ने पढ़ा था— 'हिन्दी साहित्य की लगभग डेढ़ सौ पुस्तकों के लेखक रांगेय राघव.....।' और दाँतों तले उंगुली भी दाबी थी लोगों ने .....इत्ती सी उमर और ढेरों कृतियाँ.....। लगभग डेढ़ सौ कृतियों के लेखक रांगेय राघव. .....।।"[११] पर स्वयं रांगेय राघव इसे आश्चर्य की बात नहीं मानते। अपनी प्रतिभा को उन्होंने अपने वंश की धरोहर माना था। उन्होंने इसीलिए लिखा था—

"इस पुरातन तात कुल में जात मैं रांगेय राघव
तिरूपती से नील यमुना तीर तक पगचिह्न
जिसके
पूर्वजों के बने, बनकर रहे मिटते
रक्त हो कोई मगर इन धमनियों में शक्ति
विद्युत की भरी है।
बज उठा है आज मेरी धमनियों में खौलता फिर
उस द्रविड़ का तप्त लोहू जो कि युग—युग तक
लड़ा था
वर्णदम्भी, जातिदम्भी आर्यों से गरजकर....
क्योंकि बर्बर कर रहे थे आक्रमण घर द्वार
उसका लूट।"[१२]

और साहित्य सागर तट पर बने राघव के पद चिह्न आज भी साहित्यकारों के लिए मार्गदर्शक है।

संदर्भ

१. रांगेय राघव का रचना संसार— सं. गोविन्द रजनीश, (मर गई है अक्षरों से जिंदगी की एक पाती — डॉ. सुलोचना राघव), पृ. १३, मैकमिलन इंडिया लि., १९८२
२. रांगेय राघव का रचना संसार — गोविंद रजनीश, पृ. १९
३. आलोचना — सं० शिवदान सिंह चौहान, जुलाई १९६५, (डॉ. रांगेय राघव — डॉ. पदमसिंह शर्मा 'कमलेश'), पृ. १५७
४. आलोचना — सं. शिवदान सिंह चौहान, जुलाई १९६५, (डॉ. रांगेय राघव — डॉ. पदमसिंह शर्मा 'कमलेश'), पृ. १५९
५. काव्य, यथार्थ और प्रगति— डॉ. रांगेय राघव, पृ. १०२, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९५६
६. साहित्य संदेश : आधुनिक उपन्यास अंक, जुलाई—अगस्त १९५६, पृ. ८७
७. साहित्य संदेश : आधुनिक उपन्यास अंक जुलाई — अगस्त १९५६, पृ. ८७
८. धर्मयुग — १३ सितम्बर, १९६३, नयी किताबें— नेमिचन्द्र जैन, पृ. ४७
९. रांगेय राघव का रचना संसार— सं. गोविन्द रजनीश (पुरानी यादें और रांगेय राघव— राजेन्द्र यादव), पृ. ८५—८६, मैकमिलन इंडिया लि., कम्युनिटी सेंटर, नारायणा, दिल्ली, १९८२
१०. रांगेय राघव का रचना संसार— सं. गोविन्द रजनीश, ('सूरज' जो दिन दोपहर ढल गया— अमृतराय), पृ. ३७
११. ज्ञानपीठ पत्रिका— संपादक—लक्ष्मीचन्द जैन, वर्ष दो : अंक छह, जनवरी १९६४ (अब उनकी कृतियों की गंध नहीं बहती है— जगदीश), पृ. १९
१२. धर्मयुग ४ नवम्बर, १९६३, संस्मरण— 'तिरूपती से नील यमुना तीर तक पग चिह्न जिसके .....' — घनश्याम अस्थाना, पृ. ८